इकाई 2 सामाजिक और सांस्कृतिक मानव विज्ञान का इतिहास और विकास

इकाई की रूपरेखा

2.0. प्रस्तावना

2.1 मानव विज्ञान क्यों?

2.2. सामाजिक और सांस्कृतिक मानव विज्ञान के विकास की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

2.3. मानव विज्ञान अध्ययन की एक शाखा के रूप में

2.4. मानव विज्ञान के ब्रिटिश और अमेरिकी संप्रदाय

2.5. भारत में मानव विज्ञान का विकास

2.6. सारांश

2.7. संदर्भ

2.8. अपनी प्रगति की जाँच करने के लिए उत्तर

अधिगम का उद्देश्य

इस इकाई में शिक्षार्थी निम्न बातों पर विमर्श करने में सक्षम होंगे:

- सामाजिक और सांस्कृतिक मानव विज्ञान विषय की उत्पत्ति;
- राजनीतिक और आर्थिक संदर्भ सहित उनके विकास के लिए ऐतिहासिक समय सीमा;
- औपनिवेशिक काल में इन दोनों शाखाओं में अंतर की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि; तथा
- भारत में मानव विज्ञान के विकास का इतिहास।

2.0 प्रस्तावना

मानव अध्ययन के रूप में परिभाषित मानव विज्ञान उन सभी विषयों में से सबसे अधिक विरोधाभासी है, जो अध्ययन हेतु सबसे योग्य माने जाते थे। इसका सीधा सा कारण यह है कि संसार भर में मानव समुदायों ने अपने समाज और जीवन के तरीके को उस तरह से ग्रहण किया है जैसा उन्हें प्राप्त हुआ है, और वास्तविकता यह है कि उनके द्वारा इस संबंध में कोई प्रश्न नहीं पूछा गया। प्रश्न और संदेह जो कि कुछ लोगों के मन में स्वाभाविक रूप से थे उनका निराकरण मौजूदा ब्रह्मांड विज्ञान और धार्मिक सिद्धांतों के माध्यम से किया गया था। इस इकाई में आप यह सीखेंगे कि लिखना और पढना जानने के कई सदियों बाद तथा खगोलीय विद्या, गणित, जैविक और अन्य सभी विज्ञानों के विकास के बाद आखिरकार मानव ने स्वयं, अपनी कहानी जानने पर क्यों ध्यान केन्द्रित किया?

योगदानकर्त्ता : प्रो. सुभद्रा मित्रा चन्ना पूर्व प्रोफेसर, मानवविज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

2.1 मानव विज्ञान क्यों ?

16वीं सदी के आसपास यूरोपीय दार्शनिक सोच में एक बड़ा बदलाव आया क्योंकि इनके यात्रा और व्यापार के मामले ने संसार भर में अपने भू–राजनीतिक सीमाओं का विस्तार किया। वहीं दूसरी ओर चर्च और उसकी उक्ति के साथ मोहभंग बढ़ रहा था ।

फ्रांसीसी क्रांति के साथ–साथ अमेरिकी क्रांति ने यह एहसास करवाया कि सामाजिक व्यवस्था दैवीय उत्पत्ति पर आधारित नहीं थी अपितु यह एक ऐसी व्यवस्था थी जिसे मानव गतिविधि और संस्था/प्रतिनिधित्व द्वारा समूल हिलाया–डुलाया जा सकता था। विश्व के बाकी हिस्सों से संपर्क में आने के बाद यूरोपवासियों को यह एहसास हुआ कि मानव और समाज न केवल शारीरिक रूप से भिन्न–भिन्न रूप व आकार में पाए जा सकते हैं अपितु, उनके रीति–रिवाज, जीवन–शैली और सोचने के ढंग में भी भिन्नता पाई जा सकती है। डार्विन व वॉलेस द्वारा जैविक विकास के सिद्धांतों को तैयार करने से पहले ही फ्रांसीसी विचारक और स्कॉटिश प्रबुद्ध दार्शनिको ने मानव के सामाजिक विकास की परिकल्पना भी कर रहे थे जिसमें समाज के दैव्य सृजन न होकर मानव द्वारा निर्मित होने की संभावना थी। दूसरी संस्कृतियों से संपर्क में आने पर सामाजिक विकास के विचार प्रेरित किये गए क्योंकि, यूरोपीय विचारकों ने उन्हें स्वयं के अतीत से जोड़कर संस्कृतियों की विविधता की व्याख्या करने की कोशिश की। ऑगस्ट कॉम्ट ने मानव समाज के चरण दर चरण विकास के अपने सिद्धांत को सुझाया, जिसने इस दिशा में विचारवान सोच को स्थापित किया। कॉम्ट का शोध प्रबंध यह था कि मानव समाजों का विकास, धर्मशास्त्र, अध्यात्म और विभिन्न कारणों से हुआ है जिसने यूरोपवासियों को विकासवादी पैमाने पर सबसे ऊपरी स्थान पर रखा। जब यूरोपवासियों ने दूसरे लोगों को देखा तब उन्होंने यह सोचा कि वे अपने से निम्नतर स्तर के लोगों को देख रहे हैं और साथ ही साथ पीछे की ओर देख रहे हैं। (ऑरून, 1965 देखें)।

जहाँ कॉम्ट ने इंसानों के प्रतिबिंबित संकायों और तर्कसंगत विचारों की ताकत पर ध्यान केंद्रित किया, वही सामाजिक विकास के सिद्धांत में एक और प्रमुख योगदानकर्ता हर्बर्ट स्पेंसर थे, जो चार्ल्स डार्विन के समकालीन भी थे, और उनके सामाजिक और जैविक विकास के सिद्धांतों ने कुछ हद तक अधिव्यापन भी किया था। स्पेंसर का विवादास्पद तरीका यह है कि समाज, प्राकृतिक प्रणालियों की तरह व्यवहार करते हैं, जहां वे सभी हिस्से (लोग) जो कमजोर होते हैं या जिनके जीवित रहने की संभावना कम होती है उन्हें खत्म कर दिया जाता है, जिसे 'योग्यतम की उत्तरजीविता' की लोकप्रिय अवधारणा के रूप में स्थापित किया गया और जिसे डार्विन के विकास के सिद्धांत में गलत तरीके से तैयार किया गया था। स्पेंसर का सिद्धांत यूरोप के उभरते औद्योगिक पूंजीवाद द्वारा औपनिवेशिक शासन का विस्तार इस बात पर आश्रित था कि पूंजीवाद व्यक्तिगत उद्यमी पर थोपा गया था। अन्य यूरोपीय विद्वानों के साथ–साथ कॉम्टे और स्पेंसर दोनों ही सामाजिक घटनाओं के अध्ययन के लिए उस दृष्टिकोण को प्रस्तुत कर रहे थे जिसे सकारात्मक दृष्टिकोण के रूप में जाना जाता था।

प्रतिबिंब

सकारात्मक दृष्टिकोण ने इस बात की वकालत की है कि, समाज भी वैज्ञानिक खोज के लिए किसी अन्य वस्तु की तरह ही मानव का अध्ययन और विश्लेषण करने में सक्षम थे। दूसरे शब्दों में, समाज के विद्वान भी वैज्ञानिक ही थे जो अपने विश्लेषणात्मक कौशल को

समाज में अलग–अलग वस्तुनिष्ठ तरीके को लागू कर सकते थे वह भी उसी प्रकार जैसे, वैज्ञानिक अपनी जाँच के माध्यम से करते हैं। समाज की तुलना जीवों से की गई और जीवों की तरह ही समाज के उद्‌विकास और भविष्यगामी नियम भी निर्मित हुए।

19वीं सदी के सबसे महान विचारकों में से दो विचारक, फ्रायड और मार्क्स ने क्रमशः मानव जैव–मनोवैज्ञानिक और सामाजिक विकास के अपने 'वैज्ञानिक' सिद्धांतों को आगे बढ़ाने के लिए इस सकारात्मकवादी दर्शन का प्रयोग किया। डार्विन की तरह बाद में इन दोनों पर सामाजिक विज्ञान और मानवविज्ञान के विकास का प्रभाव पड़ा। सकारात्मक युग में सिद्धांत निर्माण अत्यधिक जिज्ञासा से प्रेरित थे, जो कि यूरोपवासियों की अपनी उत्पत्ति के बारे में था। अंततः मानव की उत्पत्ति और विकास के संबंधी इस खोज ने औपचारिक रूप से अध्ययन की एक शाखा को विकसित किया जिससे मानव विज्ञान अथवा मानव का विज्ञान कहा जाता है। मानव विज्ञान की यह मूल परिभाषा दो मूलभूत अवधारणाओं को इंगित करती है, जो इस शाखा की स्थापना के बारे में सूचित करते हैं। और उनमें से पहली अवधारणा यह है कि मानव अपने आप में वैज्ञानिक विश्लेषण हेतु सभी दृष्टिकोणों से एक विशिष्ट विषय था और दूसरी अवधारणा यह है कि वास्तव में मानवीय होना ही मानव होना था।

यह हमें ज्ञान युग के एक अन्य दार्शनिक प्रतिमान में लाता है। प्रकृति/संस्कृति विरोधाभास और महिला/पुरुष द्वंद्व पर इसकी अतिसंवेदनशीलता ने यूरोपीय पुनर्जागरण के लगभग सभी प्रमुख विचारकों द्वारा मान्यता प्राप्त की और स्थापित की गई जैसे कि फ्रांसिस बेकन, फ्रायड और यहां तक कि डार्विन। कारण यह था कि उनके संकाय के साथ मानव प्रकृति पर हावी होने के लिए नियत थे और यह सभ्यता को परिभाषित करने का तरीका भी था। महिलाएं, जिन्हें फ्रायड और डार्विन दोनों ने वृत्ति से प्रेरित किया था, पुरुषों के रूप में, कारणों से निर्देशित नहीं थीं। वे प्रकृति की तरह थे, जैविक प्राणियों का प्रभुत्व था और पुरुषों द्वारा भी संरक्षित किया गया था। यह मानसिकता थी जिसने सभी बौद्धिक गतिविधियों को पुरुषों के दायरे में रखा, जबकि स्त्री को घरेलू क्षेत्र तक ही सीमित रखा गया था। इसका परिणाम यह हुआ कि पश्चिम के ज्यादातर सिद्धान्तकार पुरुष हुए।

अपनी प्रगति की जाँच करें 1

1 आरंभिक विचारकों में से कुछ का नाम बताएं जिन्होंने मनुष्य और समाज के विकास के बारे में मत प्रस्तुत किए।

.....

.....

.....

.....

2 सामाजिक विकास के संदर्भ में 'योग्यता की उत्तरजीविता' की अवधारणा को किसने शुरू किया?

.....

.....

.....

.....

3 मानव विज्ञान, 'मानव का विज्ञान' के नाम से क्यों जाना जाता है। इसके दो कारण बताएं।

.....

.....

.....

2.2 सामाजिक और सांस्कृतिक मानव विज्ञान के विकास की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

कोई सिद्धांत निर्वात में उत्पन्न नही होता है। यह सर्वविदित है कि कि गैलीलियो और कोपर्निकस अपने समय से आगे थे, जिसके लिए उन्हें विभिन्न परिणामों का सामना भी करना पड़ा। डार्विन का एक सिद्धांत को आगे बढ़ाने के लिए वे सही समय पर आगे आए जिसमें उत्पत्ति के बारे में बाइबल में जो लिखा गया था उसको पूरी तरह से संशय में रख दिया था, फिर भी उसे उत्साहपूर्ण स्वीकार किया जा रहा था। संसार के दूसरे हिस्सों पर यूरोप के औपनिवेशिक प्रक्रिया के दौरान मानव विज्ञान का विकास चरम पर था। व्यापार के माध्यम से स्थापित अपेक्षाकृत समान संबंध राजनीतिक प्रभुत्व और सकल शोषण में एक रूप किया जा रहा था। ट्रोटमैन (1997) ने वर्णन किया है कि ब्रिटेन के लोगों ने भारतीयों के साथ कैसा व्यवहार किया और वह भी लगभग तब तक जब तक कि वे व्यापार कर रहे थे लेकिन जैसे ही रानी विक्टोरिया के शासन की स्थापना हुई भारतीयों के रीति–रिवाज और उनकी संस्कृति को बेकार कहा गया और उन्हें 'असभ्य' कहकर खारिज कर दिया गया। पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की बढ़ती जरूरतों के कारण उद्योगो के लिए कच्चे माल की आपूर्ति के साथ–साथ यूरोप को अपने उत्पाद बेचने के लिए बाजारों की आवश्यकता थी। यद्यपि उसी समय ज्ञानोदय अवधि जिसका विकास फ्रांसीसी और अमेरिकी क्रांति से हुआ और जिसने समानता, मानवता और स्वतन्त्रता की विचारधारा का प्रचार–प्रसार किया। खुद को 'सभ्य' मानने वाले यूरोपवासियों की यह मान्यता थी कि वे ही न्याय और लोकतंत्र संबंधी मानवीय मूल्यों के वाहक हैं। उपनिवेशवाद के साथ इस विचारधारा और नरसंहार संबंधी गतिविधियों के बीच स्पष्ट रूप से विरोधाभास था।

वह विकासवादी सिद्धान्त था जोकि दूसरें समाजों को 'आदिम' मानते हुए यूरोपीय शासन के प्रचार–प्रसार को उचित मान रहा था और उसका समर्थन कर रहा था। कॉम्टे, बेकोफेन, मेन, मैकलेनान और अन्य विद्वानों के समूह द्वारा इस विचारधारा को आगे बढ़ाया गया कि मानव समाज का विकास विभिन्न चरणों से होकर गुजरा है और यह विकास प्रक्रिया रैखिक रूप से प्रगतिशील रही है। पश्चिमी समाजों, द्वारा विकास चरम सीमा पर पहुंचा, जिनके प्रभुत्व को स्पेंसर के सिद्धान्त 'योग्यतम की उत्तरजीविका' द्वारा उचित ठहराया गया। इस प्रकार यूरोपीय लोग इसलिए सफल थे क्योंकि वे दूसरे के मुकाबले अधिक 'फिट' थे और जिन लोगों पर वे अपने उपनिवेश स्थापित कर रहे थे वे लोग 'आदिम' थे, जिनकी तुलना फ्रायड द्वारा अवयस्क बच्चों से की गई थी। डार्विन द्वारा उन्हें मानसिक रूप से कम स्तर तक विकसित माना गया था, स्तर में कमतर होने के कारण वे लोग पश्चिम के पितृसत्तात्मक, पुरुष वर्चस्व वाली सभ्यता तक नहीं पहुंच पाए थे। उदाहरणस्वरूप बेकोफेन और मैकलेनन जैसे बुद्धिजीवी मातृवंश/मातृसत्ता को मानव विकास का निम्न स्तर मानते हुए महिला वर्चस्व वाले समाज को 'पिछड़ापन' का प्रतीक मानते थे। पहले से स्थापित प्रकृति/संस्कृति, महिला/पुरुष के द्विभाजन (डाईकोटोमी) के संदर्भ में यह अनुपालन था (ऑर्टनर 1974)। चूंकि पश्चिमी समाज

धर्म और कानूनी स्तर पर पूरी तरह से पितृसत्तात्मक था, इसलिए वे श्रेष्ठ थे। वे श्रेष्ठ सभ्यता के आत्म–प्रमाणित उदाहरण भी थे, जिन्होंने दूसरों को अर्थात आदिम लोगों को 'सभ्य' करने का कार्य किया, जो तर्कसंगत था ।

अपनी प्रगति की जाँच करें 2

4 ''संसार के अन्य भागों पर यूरोप की औपनिवेशिक प्रक्रिया के दौरान मानव विज्ञान का विकास शीर्ष पर था'' यह कथन सही है या गलत, इसका उल्लेख करें।

.....

.....

.....

5 ज्ञानोदय अवधि के दौरान फ्रांसीसी और अमेरिकी क्रांति के कारण कौन सी विचारधाराओं का प्रचार–प्रसार हुआ ।

.....

.....

.....

2.3 मानव विज्ञान एक अध्ययन शाखा के रूप में

ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में एडवर्ड बी. टायलर के मानव विज्ञान के अध्यक्ष पद पर आसीन होने के साथ ही मानवविज्ञान, अध्ययन की एक विशिष्ट शाखा के रूप में स्थापित हुआ। इस शाखा का लक्ष्य औपचारिक रूप से मनुष्य की उत्पत्ति और भिन्नता के बारे में अध्ययन और अनुसंधान करना था। डार्विन ने इस बात को दृढ़ता से स्थापित किया था कि, मानव एक जैविक प्राणी है तथा नस्लीय सिद्धान्त जो की मानव समाजों में नस्लीय अंतर लाता है, उसे विद्वानों द्वारा अस्वीकार किया गया। यदि नस्लीय मानदंड नहीं होता तो विभिन्न मानव समूहों में शारीरिक के साथ–साथ सामाजिक अंतर के दूसरे कारण तलाशने होंगें। अतः मानव विज्ञान शाखा का उद्देश्य, मानव के जैविक के साथ–साथ सामाजिक विकास की जांच–पड़ताल करना था और उनके वास्तविक रूप–स्वरूप संबंधित प्रेक्षित अंतरों एवं सामाजिक–सांस्कृतिक जीवन के बारे में वर्णन करना था। जैविक विकास की प्रक्रिया को समय से आगे देखना होगा कि मानव, वास्तव में मानव कब बने, इसलिए जैविक विकास की जड़ें प्राचीन मानवविज्ञान (पैलेओन्थ्रोपोलॉजी) अथवा मानव और पूर्व–मानवनुमों(प्री–ह्यूमन होमिनिड्स) के जीवाश्म अध्ययन और प्राइमेटोलॉजी या उच्च–स्तनपायियों के व्यवहार और शरीर विज्ञान के अध्ययन तक जाती हैं। दूसरी ओर सामाजिक विकास के अंतर्गत न केवल पूर्व–ऐतिहासिक अवशेषों और पुरातात्विक जड़ों की खोज की गई अपितु इसे मौजूदा मानव समाजों को पश्चिमी यूरोप जैसे अधिक विकसित समाजों का अवशेष माना गया।

यह अंतिम अवधारणा थी जिसने सामाजिक विकास के सिद्धान्त के आधार को तैयार किया जहां टायलर ने यह माना कि स्थानिक अंतर को अस्थायी अंतर माना जा सकता है। यद्यपि इस सिद्धान्त ने कुछ लोगों को विकासवादी सीढ़ी के निचले स्तर पर लाकर खड़ा कर दिया, तथापि यह अपने आप में इस बात पर आधारित था कि उस समय 'मानवता की आत्मिक एकता' (साइकिक युनिटी ऑफ मैनकाइंड) का सिद्धान्त किसे माना जाता था। चूंकि मनुष्य,

मानव के रूप में एक प्राणी था इसलिए यह अवधारणा थी कि वे आवश्यक रूप से एक समान सोचेगें। यह माना जाता था कि सभी मानवों की एक संस्कृति हो जिसे इंगोल्ड (1986) ने कैपिटल सहित संस्कृति का नाम दिया है। उस समय जो अंतर देखे गए उनका वर्णन यह कहते हुये किया गया कि, अलग–अलग लोगों का विकास अलग–अलग स्तर की संस्कृतियों से हुआ है और इसमें इस बात को भी जोड़ा गया किय अंततः सभी लोग एक समान स्तर की संस्कृति को अर्जित कर लेंगे जैसा कि पश्चिमी समाजों द्वारा प्राप्त किया गया है। कई बार मानव विज्ञान की आलोचना इसलिए की गई कि वह एक औपनिवेशिक शाखा थी और विशेष रूप से यह सामाजिक विकास के सिद्धान्त से जुड़ी हुई थी। वह भी 'सभ्यता' संबंधी अपनी परिभाषा (जिसे पश्चिम का प्रर्याय माना जाता था) द्वारा जो कि यूरोपकेन्द्रित (यूरोसेन्ट्रिक) थी और प्रत्यक्ष या प्ररोक्ष रूप से औपनिवेशीकरण को बढ़ावा दे रही थी।

प्रतिबिंब

प्रजातिकेंद्रिकताः प्रजातिकेंद्रिकता अपनी संस्कृति को बेहतर मानने की भावना और साथ ही साथ किसी काम को सामान्य तरीके से करने की भावना के बारे में बताता है। यूरोसेन्ट्रिक परिप्रेक्ष्य यूरोपीय लोगों की इस भावना को बताता है जिसमें वे अपने समाज और संस्कृति को सामाजिक विकास की ऊंचाई पर पाते हैं और उसे सबसे सभ्य मानते हैं।

मानव विज्ञान चार प्रमुख शाखाओं में विकसित हुआ। जैविक मानव विज्ञान जो कि मानव की जैविक विविधता से जुड़ा है, भाषा विज्ञान, जो संस्कृति और भाषा से जुड़ा है, पुरातत्व जिसका संबंध मानव समाज के अतीत से है, मानव समाज और उसकी संस्कृति से सामाजिक–सांस्कृतिक मानव विज्ञान के रूप में। हालाँकि ये शाखाएं एक दूसरे से पूरी तरह से अनन्य नहीं हैं। समाज के रूप में रहने वाले इन मानवों के 'संस्कारी प्राणियों' के रूप में विकसित होने की तथ्यता, मानवविज्ञान के सभी पहलुओं को रेखांकित करते हैं। मानव विज्ञान के प्रारम्भिक यूरोपकेन्द्रित (यूरोसेन्ट्रिक) पूर्वाग्रह को बाद में एक अधिक सापेक्ष और मानवीय दृष्टिकोण से प्रतिस्थापित किया गया। संसार के ऐतिहासिक परिवर्तनों ने मानव वैज्ञानिक प्रतिमानों में बहुत बदलाव लाया गया।

अपनी प्रगति की जाँच करें 3

6. ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में मानव विज्ञान के पद पर पहले पहल कौन आसीन हुए?

.....

.....

.....

7. मानव विज्ञान की चार प्रमुख शाखाओं का नाम बताएं ।

.....

.....

.....

2.4 मानव विज्ञान के ब्रिटिश और अमेरिकी संप्रदाय

मानव विज्ञान एवं उपनिवेशवाद का आंतरिक संबंध इस शाखा के ब्रिटिश स्वरूप के विकास से स्पष्ट होता है, जबकि मानवविज्ञान के इस विकास को अमेरिकी सांस्कृतिक परंपरा के रूप में जाना जाता है। यूरोपीय महाद्वीप में ब्रिटिश संरचनात्मक–प्रकार्यात्मक स्कूल की अकादमिक जड़ें दुर्खीम (1950) की कार्यात्मकता से निर्मित की गई थीं, जो फ्रांसीसी स्कूल ऑफ सोशियोलॉजी से संबंधित थीं। संरचनात्मक–कार्यात्मक संप्रदाय ने अपने काल्पनिक सिद्धांतों हेतु शास्त्रीय उद्विकासवाविदों की आलोचना की। विकास के सिद्धांतों से दूर जाने के कारण उन्होंने अनुभववाद की ओर रुख कर लिया और क्षेत्रीयकार्य अध्ययन(फील्डवर्क) विधि को विकसित किया, जो कि वर्तमान समय मे मानव विज्ञान की कसौटी का प्रतीक बन गया है।

संरचनात्मक–कार्यात्मक संप्रदाय का यह मानना था कि प्रत्येक समाज में सामाजिक संबंधों के रूप में एक संरचना होती है, और इस संरचना के प्रत्येक भाग का एक कार्यात्मक तर्क होता है, जो संपूर्ण रूप से योगदान करता है। संरचनात्मक–कार्यात्मकता का मूल आधार सांस्कृतिक सापेक्षता के इस तरीके पर टिका हुआ था, कि संस्कृतियां उसी संस्कृति की उच्च अथवा न्यून अभिव्यक्ति नहीं थीं अपितु व्यापक दृष्टिकोण से संस्कृतियां अपने आप में पूरी तरह कार्यात्मक थीं। प्रत्येक समाज को बाध्य किया गया था। इसकी तुलना एक जीव से की गयी है, जिसका प्रत्येक भाग पूरे शरीर के क्रियाकलाप में योगदान देता है। इस प्रकार तुलनात्मक पद्धति का उपयोग करके धर्म और नातेदारी जैसी संस्कृतियों के हिस्सों का अध्ययन नहीं कर सकता है, जैसा कि शास्त्रीय उद्विकासवादी सिद्धांत में किया गया था, इसके द्वारा स्थापित भागों के बीच प्रकार्यात्मक संबंध, संबंधित लोगों के साथ घनिष्ठता और अंतरंग बातचीत का परिणाम थी, लेकिन एक समाज को इसकी संपूर्णता और गहराई से अध्ययन करने की आवश्यकता थी। इस दृष्टिकोण के लिए मुख्य रूप से ब्रिटिश मानव विज्ञानी जिम्मेदार थे, जो इसका उपयोग शासन के उन ताकतों के तहत ऐसे समाजों का अध्ययन करने के लिए करते थे, जिन्हें स्थिर संतुलन में रहने हेतु नियंत्रित किया जाना जरुरी था। प्रशासकों की इच्छा कुछ हद तक अकादमिक अनुमानों में प्रतिबिम्बित हुई।

प्रतिबिंब

सांस्कृतिक सापेक्षता : सांस्कृतिक सापेक्षता सैद्धांतिक स्थिति को संदर्भित करती है जहां किसी भी संस्कृति के पहलुओं को प्रासंगिक के रूप में देखा जाता है, जो कि उनके स्वयं के संदर्भ में कार्यात्मक होती है और दूसरी संस्कृतियों के समान नहीं होती है। यह विकासवादी सिद्धांत की आलोचना थी और कार्यात्मक सिद्धांत की आधार थी।

क्षेत्रीय कार्य (फील्डवर्क) विधि को ब्रोनिस्लो मालिनोव्स्की के ट्रोब्रिआंड द्वीप समूहों के लंबे समय के अध्ययन द्वारा शास्त्रीय आकार प्रदान किया गया था। मालिनोव्स्की एक समर्पित फील्डवर्कर बन गए वह भी स्वेच्छा से नहीं, बल्कि विश्व युद्ध की अनिवार्यता की वजह से। उनकी *अग्रोनौट्स ऑफ द वेस्टर्न पेसिफिक* (1922) नामक पुस्तक को मानव विज्ञान के छात्र धर्मग्रंथ की तरह पढ़ते हैं।

अधिकांश उपनिवेशों में कार्यात्मक अध्ययन ब्रिटिश और फ्रेंच मानव विज्ञानियों द्वारा किए गए थे। वे अक्सर औपनिवेशिक सरकारों द्वारा लोगों के बारे में जानकारी प्रदान करके प्रशासन की सहायता में संलग्न थे, ताकि उन्हें बेहतर ढंग से नियंत्रित और प्रबंधित किया जा सके। जैसा कि भारत में यह हुआ कि कई प्रशासकों ने लोगों पर शासन करने के उद्देश्य से जब क्षेत्रीयकार्य किया तो परिणाम स्वरूप वे खुद ही मानव विज्ञानी बन गए। परंतु इन प्रशासकों/नृवंशविदों के कार्य पूर्वाग्रह विहीन नहीं थे (चन्ना, 1992)। हालाँकि, मानव विज्ञानविदों को सामान्यतः आरंभ में राज्य द्वारा वेतन दिया जाता था और वे उपनिवेशवाद के राज्य एजेंडा का समर्थन करने के लिए आवश्यक था। लोगों के साथ लंबे समय तक रहने और उनके साथ घनिष्ठ संपर्क के परिणामस्वरूप उन्हें, उनके अध्ययन के लिए भेजा गया और कई बार वे राज्य की नीतियों के विरोधी भी बन गए। कभी–कभी उनके प्रभाव ने सरकार की नीतियों को बदल दिया। उदाहरण के लिए, मानव विज्ञानविद वेरिएर एल्विन का प्रभाव नेहरू सरकार द्वारा बनाई गई नीतियों में देखा गया जिसके आधार पर भारत के उत्तर–पूर्व के लोगों पर शासन किया जाना था। मानव विज्ञानी अक्सर स्थानीय रीति–रिवाजों को संरक्षित रखने की वकालत करते थे और वे स्थानीय मूल निवासियों के जीवन में अनुचित हस्तक्षेप के विरुद्ध थे। भारत और अफ्रीका में कार्य कर रहे ज्यादातर मानव विज्ञानी सरकारों के ही प्रतिनिधि थे जो 'बाहर' से काम करते थे। भारत और अफ्रीका के एक बड़े भू–भाग पर ब्रिटिश, फ्रेंच और डच सरकारों के बाह्य उपनिवेश थे, जहाँ पर उन देशों के मूल समाज और संस्कृतियां काफी हद तक बरकरार रहीं, इसी प्रकार की स्थिति इंडोनेशिया, बर्मा (म्यांमार) और अन्य उपनिवेशों में मौजूद थीं जहाँ की संस्कृति और समाज पर अंग्रेजों का आधिपत्य नहीं हो पाया।

अमेरिका में, स्थिति बहुत भिन्न थी। वहाँ के मूल अमेरिकी, बिखर से गए थे और उनके समाज नष्ट हो गए थे। अपितु मानव विज्ञानविदों ने जब उनका अध्ययन करना शुरू किया तब तक कई बची हुई जनजातियों और समुदायों को खत्म कर दिया गया। अमेरिकी मानव विज्ञान के जनक फ्रांज बोआस ने भी अपना मूल आधार जर्मन प्रसारवाद (German Diffusionism) से अर्जित किया। जिसने इतिहास, प्रवासन और सामाजिक परिवर्तन के बारे में एक विशेष दृष्टिकोण पर बल दिया। ब्रिटिश सामाजिक मानव विज्ञान के शास्त्रीय विकासवादी और कार्यात्मक आधार के विपरीत अमेरिका वालों को नरसंहार का सामना करना पड़ रहा था और समाजों के बड़े पैमाने पर प्रसार समकालिक, कार्यात्मक दृश्य का सामना नहीं कर सकते थे, संरचनात्मक– कार्यकर्ताओं द्वारा इसे कालातीत सद्भाव के रूप में देखा गया। समाज के विपरीत उन्होंने आवश्यकता अनुसार संस्कृति की अवधारणा पर बल दिया क्योंकि वे जो अध्ययन करने जा रहे थे वह समाजों पर केन्द्रित नहीं था, अपितु लोगों के जीवन के मिथकों, लोककथाओं, भौतिक संस्कृति और जीवन के तरीकों की कथाओं के बारे में था, जो कि या तो समाप्त हो गया था या जल्द ही समाप्त होने वाला था। उन्होंने जिन लोगों का अध्ययन किया, वे नवाहो की तरह छुपा सा जीवन बिता रहे थे। वे भी गरीबी, मानसिक और शारीरिक कष्टपूर्ण तथा कार्यशील समाज को कायम रखने के लिए जादूगरी नहीं करते थे अपितु अत्यधिक कठिन स्थितियों से बचने के लिए यह सब करते थे, जैसा कि इवांस–प्रिचर्ड द्वारा अजांदे पर किए गए अध्ययन में बताया गया है।

प्रतिबिंब

प्रसारवाद : प्रसारवाद वह सिद्धांत है जिसमें मूल केंद्र बिन्दु से संस्कृतियों के प्रसार पर बल दिया जाता है और समान लक्षण के समानांतर विकास पर बल नहीं दिया जाता है। अधिक समय बीतने के साथ यह विकास के विपरीत संस्कृतियों की गिरावट है और उद्‌गम स्थल से दूरी की ओर झुकाव है। उनका मानना है कि मूल अवधारणाएँ शायद ही कभी दिखती हैं, जबकि प्रसार के कारण समान सांस्कृतिक लक्षण होते हैं ।

बोआस के शिष्य और अमेरिकी मानव विज्ञान के सदस्य, क्रोबर ने संस्कृति संबंधी अपनी प्रसिद्ध परिभाषा को 'सुपर–ऑर्गनिक, सुप्रा–इंडिविजुयल' के रूप में दिया, दूसरे शब्दों में कुछ ऐसा जिसका अभी भी अध्ययन किया जा सकता है भले ही संस्कृति वाहक समाप्त हो गए हों। बोआस के अनुसार, ऐतिहासिक विशेषता विस्तृत सामान्यीकरण की कोई पद्धति नहीं थी अपितु संस्कृति को पर्यावरण के एक परिणाम के रूप में देखा गया, जो विशिष्ट पर्यावरणीय परिस्थितियों में मौजूद था और उन लोगों द्वारा संवाहित की जा रही थी जिनके पास विशेष मनोदशा थी, जो उनकी संस्कृति की प्रकृति के अनुकूल थी। दूसरे शब्दों में बोआस और उनके अनुयायियों ने स्वयं को संरचनात्मक–कार्यकर्ताओं की तरह सामाजिक अध्ययन तक सीमित नहीं रखा बल्कि संस्कृति की प्रकृति कि व्याख्या करने के लिए इतिहास, मनोविज्ञान और पर्यावरण की ओर भी ध्यान दिया। बोआस की किताब *द माइंड ऑफ द प्राइमेटिव मैन* संज्ञान में किया गया एक अध्ययन था और वह जर्मन संप्रदाय के गेस्टॉल्ट मनोविज्ञान से भी प्रभावित था। क्रोबर द्वारा विकसित रीति–रिवाज की अवधारणा जिसमें वे कुछ हिस्सों की बात न करके सबके योग की बात करते हैं, वह गेस्टॉल्ट संप्रदाय से प्रभावित थी। अमेरिकी संप्रदाय से उभरने वाले अन्य विद्वानों ने संस्कृति और व्यक्तित्व के बीच संबंध विकसित किया, जिससे सांस्कृतिक अंतर को समझाने के लिए मनोवैज्ञानिक अवधारणाएं सामने आईं, जैसा कि रूथ बेनेडिक्ट (1934) की रचना *द क्रिस्टेंथेमम एंड सोर्ड* संस्कृति के पैटर्न पर आधारित थी, जिसमें उन्होने सांस्कृतिक रीति–रिवाजों की अवधारणा का इस्तेमाल किया है। बोआस ने मनोविज्ञान से संबंधित अपनी अभिरूचि को अपने शिष्यों मार्गरेट मीड, लिंटन और कुछ अन्य शिष्यों तक प्रसारित किया। जिन्होंने बाद में मनोवैज्ञानिक मानव विज्ञान की शाखा की नींव रखी, जिसका विकास संस्कृति–व्यक्तित्व संप्रदाय से हुआ। व्यक्तित्व के शुरुआती गठन संबंधी फ्रायडियन सिद्धान्त को मानव विज्ञानविदों द्वारा पुनःनिर्मित किया गया, जिन्होंने इस बात को इंगित किया कि बालक के पालन–पोषण के प्रारंभिक अनुभव सांस्कृतिक रूप से विशिष्ट तरीकों से जुड़ा होता है इसलिए संस्कृति, व्यक्तित्व गठन का एक प्रमुख कारक होता है। इस सिद्धान्त का एक नवांकुर राष्ट्रीय संस्कृति की अवधारणा थी जो बहुत लोकप्रिय हुई।

अमेरिकी संप्रदाय न केवल मनोवैज्ञानिक क्षेत्रों में फैला अपितु, यह अपने ऐतिहासिक विशिष्टता के मूल स्थल से निकलकर पारिस्थितिकीय मानव विज्ञान, आर्थिक मानव विज्ञान, चिकित्सा मानव विज्ञान और ऐतिहासिक मानव विज्ञान के रूप में फैल गया। पचास के दशक के बाद हालांकि, दो परंपराओं का अलग होना लगभग विलुप्त हो गया क्योंकि संरचनात्मक–कार्यात्मकता और ऐतिहासिक विशिष्टता का स्थान अत्यधिक समकालीन सिद्धांतों ने ले लिया।

प्रतिबिंब

सिग्मंड फ्रायड : सिग्मंड फ्रायड, मनोविश्लेषणात्मक संप्रदाय के संस्थापक थे और उन्हें मानव व्यक्तित्व विकास के उनके सिद्धांतों के लिए जाना जाता है। जिसकी पहचान के लिए उन्होने इसे प्रारंभिक बाल्यावस्था अनुभवों के आधार पर देखा था। उन्होंने ऑडीपल कॉम्प्लेक्स की भांति बचपन के अनसुलझे अंतर्विरोधों के संदर्भ में न्यूरोसिस का वर्णन किया।

अपनी प्रगति की जाँच करें 4

8. अध्ययन की कौन सी विधि मानव विज्ञान की कसौटी है?

.....

.....

.....

.....

9. ''अग्रोनौट्स ऑफ द वेस्टर्न पेसिफिक'' नामक किताब किसने लिखी है?

.....

.....

.....

10. अमेरिकी मानव विज्ञान का जनक किसे माना जाता है?

.....

.....

.....

11. नवाहो लोगों का अध्ययन करते समय अमेरिकी मानवविज्ञानियों ने समाज के स्थान पर संस्कृति की अवधारणा पर क्यों बल दिया?

.....

.....

.....

.....

12. अमेरिकी के कुछ प्रारंभिक मानव विज्ञानविदों के नाम बताएं और उनके मतों पर प्रकाश डालिए?

.....

.....

.....

2.5 भारत में मानव विज्ञान का विकास

जब मानव विज्ञान विकसित हो रहा था तब भारत एक ब्रिटिश उपनिवेश था। आरंभ में जो कार्य किए गए उन्हें मानव विज्ञान के रूप में माना जा सकता है, उदाहरणार्थ हट्टन जैसे ब्रिटिश प्रशासकों द्वारा किया गया। लेकिन इनमें उनके नस्लीय पूर्वाग्रह और यूरोसेन्ट्रिज्म की भावना मौजूद थी (चन्ना 1992), हालांकि वास्तव में वे लोग शैक्षिक रूप से उन्मुख थे और अत्यधिक शिक्षित थे। उन्हें लोगों और अन्य संस्कृतियों के बारे में अत्यधिक जिज्ञासा थी जिन पर वे शासन करना चाहते थे। अपने शासकों द्वारा दिए गए नेतृत्व के बाद ये विद्वान, जिन्हें हम अब भारत में मानव विज्ञान संबंधी विचारधारा के जनक के रूप में देखते हैं, उनमें एस.सी रॉय और अनंतकृष्ण अय्यर जैसे विद्वानों के नाम शामिल हैं, जो कि विकास के यूरोपीय सिद्धान्त के साथ–साथ सार्वभौमिक मानवता से भी प्रभावित थे। उनका यह प्रभाव रॉय के लेखन में प्रतिबिंबित होता है, जिसमें उन्होंने मध्य भारतीय जनजातियों के बारे में लिखा है। उन्होंने ब्रिटिश प्रशासन के साथ मिलकर काम किया। कुछ वृहद एथ्नोलॉजी की रचनाएँ की जिसमें सामाजिक–सांस्कृतिक मानव विज्ञान और जैविक मानव विज्ञान को शामिल किया। मुंडा और उरांव संबंधी एस.सी.रॉय की रचना और कोचिन की जनजातियों पर अय्यर की रचना की भांति, इन रचनाओं में जीवन के सभी पहलू समाहित हैं, जैसे कि इतिहास, प्रवासन, आवास, लोगों की वास्तविक रूप–रेखा, उनकी संस्कृति, भाषा और सामाजिक संस्थान।

कलकत्ता विश्वविद्यालय, पहला विश्वविद्यालय था जहां 1921 में मानव विज्ञान विभाग कि स्थापना हुई और उस विभाग में बी एस गुहा, अनंतकृष्ण अय्यर, पंचानन मित्रा, एन. के. बोस जैसे कुछ अन्य संकाय सदस्य थे। यद्यपि, 1919 में बंबई विश्वविद्यालय में सामाजिक मानव विज्ञान को समाजशास्त्र पाठ्यक्रम के भाग के रूप में पहली बार प्रस्तुत किया गया। प्रारंभ में मानव विज्ञान को एक एकीकृत विषय के रूप में पढ़ाया जाता था। जिसमें शारीरिक और सामाजिक पहलुओं को शामिल किया गया था। यह मानव विज्ञान की अपेक्षा एथेनोलॉजी अधिक था, जिसे एस सी रॉय के साथ साथ एन. के. बोस जैसे विद्वानों के प्रबंध लेखन कार्यों में देखा जा सकता है। इन्होंने समाज के सभी पहलुओं को अपने विवरण में शामिल किया।

उस समय प्रारंभिक कार्य जनजातियों या आदिमजातियों से संबंधित आंकड़ों का संग्रहण ही था, क्योंकि विकासवादी अवधारणा के अंतर्गत जीवन जीने की यह शैली समाप्त होने वाली थी, जिसे मानव विज्ञान के रूप में जाना जाता था। संकलन का यह कार्य जिसे एच. एच. रिस्ले द्वारा शुरू किया गया था। जिसने 1931 में जनगणना के बाद भारत के एक एथनोग्राफिक सर्वेक्षण की शुरुआत की थी। चूंकि, भारत के सभी भाग उस समय ब्रिटिश शासन के अधीनस्थ नहीं थे इसलिए इस सर्वेक्षण में सहयोग करने के लिए स्वतंत्र राज्यों से अनुरोध किया गया था। कोचीन दरबार वह इकाई थी जिसने 1902-1924 तक कोचीन राज्य के एथनोग्राफी के अधीक्षक के रूप में एल. के. अनंतकृष्ण अय्यर को नियुक्त किया, जिसके परिणामस्वरूप कोचीन जनजाति और जातियों पर दो खंड सामने आए जिनका प्रकाशन 1908-1912 के बीच हुआ। अय्यर ने 1920 तक अपने अध्ययन को जारी रखा और 1921 में कलकत्ता विश्वविद्यालय में नियुक्त हुए जहां से वह 1932 में सेवानिवृत्त हुए।

यह जानना दिलचस्प है कि एक स्थानीय मानव विज्ञानी के रूप में उन्होंने अपने यूरोपीय समकक्षों के बीच बड़ी रुचि पैदा की जोकि उनके द्वारा भारत के 'आदिम' लोगों पर दिये गए व्याख्यान को सुनने के लिए उत्सुक थे। उन्होंने यूरोप में बहुत सारी यात्राएं कीं और व्याख्यान

दिए और 1934 में लंदन में आयोजित मानव विज्ञान और एथ्नोलॉजिकल विज्ञान के प्रथम अधिवेशन में भाग लिया, जहां उन्हें अधिक मान–सम्मान मिला।

जब मानव विज्ञान ने खुद को एक क्षेत्र (फील्ड) विज्ञान के रूप में स्थापित किया और एकल समुदाय के समग्र और कार्यात्मक अध्ययन के आधार पर व्यक्तिगत मानव विज्ञानविदों के लेखन की शुरुआत की गई तो, पश्चिमी देशों के कई मानव विज्ञानी भारत आए और यहाँ कई अनुसंधान कार्य किए। उनमें से प्रमुख हैं, ग्रेट ब्रिटेन में मानव विज्ञान के जनक ए.आर. रैडक्लिफ–ब्राउन, जिन्होंने *द अंडमान आइलैंडर्स* नामक क्लासिक मोनोग्राफ लिखा, जिसका प्रकाशन 1922 में कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस द्वारा किया गया। उनसे पहले डब्ल्यू. एच. आर. रिवर्स, जो विकासवाद और प्रकार्यात्मकता की सीमा से परे थे, उन्होंने *द टोडा* पर 1911 में अपनी मूल रचना लिखी और वह भी उसी साल जब सिलिग्मंस ने भी *द वेदास ऑफ सीलोन* नामक अपनी एथ्नोलोजी से संबंधित अपनी किताब प्रकाशित की ।

एस. सी. रॉय मध्य भारतीय जनजातियों जैसे, मुंडा और ऊरांव पर लिखे अपने संकलन के लिए जाने जाते हैं। उनका काम शुरुआती एथनोग्राफर्स के समान है। इस विधा के एक दूसरे विद्वान थे इरावती कर्वे, जिन्होंने सामान्य तुलनात्मक एथ्नोलोजी पर कार्य किया। कर्वे ने भारत में विभिन्न परिवार प्रणालियों से संबंधित क्षेत्रवार संकलन किया, जिसमें प्राचीन भारतीय परिवारों का मूल्यांकन किया गया, जिसे उन्होंने भारतीय पौराणिक कथाओं के अध्ययन से पुनर्प्राप्त किया था। हालांकि, उनका मौलिक योगदान यह दर्शाने में था कि भारत में जाति और नस्ल एक दूसरे से जुड़े हुए नहीं हैं, और यह एक ऐसी परिकल्पना थी जिसे एच. एच. रिस्ले द्वारा विकसित किया गया था और जी एस घुर्रे जैसे विद्वानों द्वारा समर्थित किया गया था।

इन सामान्य एथ्नोग्राफियों के आधार पर पी. ओ. बोडिंग ने अधिक विशिष्ट और केंद्रित रचनाएँ लिखीं, जिनकी *संथाल मेडिसिन* (1925-1940) नामक रचना को अब चिकित्सा मानव विज्ञान के क्षेत्र में क्लासिक का दर्जा प्राप्त है। बोडिंग, जो एक नार्वेजियन विद्वान हैं। उन्हें भी उनके संथाल व्याकरण (1922), संथाल लोकगीत और संथाल पहेलियों एवं जादू संबंधी अन्य कार्यों के संकलन के लिए जाना जाता है।

ए. आर. रैडक्लिफ–ब्राउन के एक शिष्य एम. एन. श्रीनिवास न केवल अपने उत्कृष्ट एथनोलॉजी के लिए प्रसिद्ध हैं बल्कि, एक स्वदेशी परिप्रेक्ष्य से जाति संबंधी महत्वपूर्ण अंतर्दृष्टि विकसित करने के लिए भी प्रसिद्ध हैं। जाति और वर्ण संबंधी अवधारणाओं का उनके द्वारा इस्तेमाल किया जाना और इस तरह से संस्कृतिकरण की अवधारणा और प्रमुख जाति की अवधारणा के बारे में बताना उनके आंतरिक परिपेक्ष्य को दर्शाता है, जोकि बहुत समृद्ध हो सकता है।

भारतीय और पश्चिमी मूल के कई विद्वानों ने 1930 के बाद से भारत में कार्य किया और विश्लेषणात्मक अवधारणाओं को विकसित करने और उन्मुख मानव विज्ञान विकसित करने के लिए क्षेत्रीय अध्ययन विधियों का उपयोग किया। 1938 के बाद से बड़ी संख्या में अमेरिकी मानव विज्ञानियों ने भारत का दौरा किया और यहाँ काम किया। जिसमें मैककिम मैरियट, ऑस्कर लेविस, मॉरीस ओप्लर, स्टेनली और रूथ फ्रीड, रॉबर्ट रेडफील्ड, कैथलीन गॉफ, जॉन. पी. मेनचर, पॉलिन कोलेन्डा और अन्य लोग शामिल थे, जिन्होंने स्थानीय विद्वानों के साथ घनिष्ठ सहयोग में काम किया और जाति, 'जजमानी', अस्पृश्यता, गांव के अध्ययन और जनजातियों के अध्ययन जैसे, भारतीय मुद्दों पर अपना ध्यान केंद्रित किया। इस अवधि में कई विश्लेषणात्मक नियम और श्रेणियां विकसित हुईं जैसे कि, सार्वभौमिकरण और स्थानीयकरण, लघु परंपरा और महान परंपरा, जनजातीयता, हिंदूकरण आदि। सैद्धांतिक विवाद का एक पहलू

जनजातियों को श्रेणी माना जाना था जोकि भारतीय संदर्भ में था, जिसमें जनजाति–जाति निरंतरता की अवधारणा को एन. के. बोस और अन्य कई विद्वानों द्वारा शुरू किया गया था। (नाथन 1997)

वेरिएर एल्विन और क्रिस्टोफ वॉन फ्यूरर–हैमिन्डार्फ जैसे कुछ पश्चिमी मानव विज्ञानविदों ने व्यावहारिक रूप से स्थानीय होने के लिए अपने मूल देशों को छोड़ दिया। अंग्रेज के रूप में जन्मे और पेशे से ईसाई मिशनरी के सदस्य एल्विन ने अपने दोनों रूपों को त्याग दिया और भारतीय नागरिक बन गए और हिंदू पहचान को स्वीकार कर लिया, जो कि यद्यपि एक रूढ़िवादी उच्च जाति नहीं थी। गांधी के एक महान प्रशंसक और अनुयायी एल्विन, खुशी से जनजातियों के स्वतंत्र और आसान जीवन के साथ मिल गए। जिसमें उन्होंने शादी की और उनके बच्चों का जन्म हुआ। उन्होंने अपने दर्शन का प्रस्ताव अरुणाचल प्रदेश के रूप में किया। जिसे उन्होंने लोगों की स्वतंत्रता के रूप में देखा ताकि, किसी बाहरी दबाव के बिना लोग अपने जीवन जीने के तरीके का चयन कर सकें । भारत के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू के साथ उनके करीबी रिश्ते ने पंचशील की नीति और जनजातियों के प्रति सहिष्णु दृष्टिकोण ने उन लोगों को अपने जीवन को अपने तरीके से जीने के लिए प्रेरित किया।

प्रतिबिंब

जजमानी : जजमानी, जाति आधारित भारतीय गांवों में पायी जाने वाली कृषि आधारित एक पुनर्वितरण प्रणाली है। लैंडहोल्डिंग अर्थात भू–स्वामी जातियां विशेषज्ञ, जाति समूहों को उपज का हिस्सा देती हैं जो उन्हें बाल काटने, कपड़े धोने और कृषि श्रम जैसी सेवाएं प्रदान करती हैं। भारत के कई हिस्सों में ब्राह्मण भी एक आश्रित जाति है जो भोजन और अन्य निर्वाह के बदले में अनुष्ठान सेवाएं प्रदान करता है।

सार्वभौमिकरण और स्थानीयकरण : सार्वभौमिकरण सांस्कृतिक संचरण की प्रक्रिया है जहां एक सरल समाज से एक विशेषता सार्वभौमिक संस्कृति में विलीन हो जाती है और स्थानीयकरण एक विपरीत प्रवशत्ति है जहां एक जटिल सभ्यता से एक विशेषता को एक संशोधित रूप में स्थानीय संस्कृति में स्वीकार किया जाता है।

छोटी परंपरा और महान परंपरा : ये शब्द रॉबर्ट रेडफील्ड द्वारा बनाए गए थे और क्रमशः सरल समाज और जटिल समाज की संस्कृतियों का उल्लेख करते थे।

जनजातीयता : जनजातीय समाज से जाति समाज में सांस्कृतिक लक्षणों की स्वीकृति पाना ताकि वे जनजाति के समान सांस्कृतिक गुण विकसित कर सकें। इसका अर्थ यह भी हो सकता है कि, कुछ जाति आधारित लक्षणों को छोड़कर और जनजातियों में मिले अनुष्ठानों और भोजन को स्वीकार करना।

हिंदूकरण : यह ज्यादातर ब्राह्मणवादी मूल्यों और जाति व्यवस्था की स्वीकृति को संदर्भित करता है

भारतीय विद्वान, अमेरिकी संप्रदाय द्वारा इस विश्लेषणात्मक चरण में समान रूप से प्रभावित थे क्योंकि उन्हें पहले मुख्य रूप से ब्रिटिश संप्रदाय और महाद्वीप में उजागर किया गया था। प्रारंभिक भारतीय विद्वानों में से कुछ लोगों जिन्होंने भारतीय समाज के अध्ययन में महत्वपूर्ण योगदान दिया उनमें एस.सी. दुबे, लीला दुबे, ए.अय्यप्पन, एल.पी विद्यार्थी और अन्य शामिल हैं। पचास के दशक से मानव विज्ञान को एक अलग विषय के रूप में पढ़ाया जाता था और इससे

पहले प्रयोग किए जाने वाले संयुक्त नृवंशविज्ञान (इथेनोग्राफी) के दृष्टिकोण को अच्छी प्रकार से विकसित पाठ्यक्रम द्वारा प्रतिस्थापित किया गया। जिसमें सामाजिक मानव विज्ञान, शारीरिक मानव विज्ञान और पुरातत्व के गहन अध्ययन शामिल थे।

अस्सी के बाद से हाल के दिनों में भारतीय मानवविज्ञान एक बहुत ही महत्वपूर्ण और औपनिवेशिक शाखा के रूप मे विकसित हो गया है। कार्य अब विशिष्ट मुद्दों पर केंद्रित हैं, जैसे कि पारिस्थितिकी, लिंग, जाति का शोषण और जटिल और परिवर्तनशील संसार में पहचान के प्रश्न। बी.के. रॉय बर्मन, वर्जिनियस खाखा, फेलिक्स पडेल, बी.डी शर्मा जैसे अधिक समकालीन विद्वानों ने भारत में जनजातियों के शोषण और पहचान, संसाधनों के नुकसान के मामले में उन की स्थिति पर गंभीर रूप से ध्यान दिया है।

एस. सी. दुबे और एन. के. बोस जैसे भारतीय मानव विज्ञान के कुछ अधिकारियों ने उन अवस्थाओं से संबन्धित अपना वर्गीकरण दिया है, जिसके माध्यम से भारतीय मानव विज्ञान विकसित हुआ है। वे जनजातियों के विश्वकोश और डेटा बेस के संकलन और निर्माण के पहले चरण की पहचान करते हैं, दूसरा चरण, अनुभवजन्य क्षेत्र और जनजातियों पर गुणात्मक रूप से निर्मित मोनोग्राफ का निर्माण और तीसरा, उन पर किए गए विश्लेषणात्मक कार्य। डी. एन मजूमदार के अनुसार पहले चरण को फॉर्मूलेशन चरण (1774–1911) कहा जा सकता है जबकि दूसरे चरण को 1912–1937 को रचनात्मक चरण कहा जा सकता है। 1938 से शुरू होने वाला समय महत्वपूर्ण चरण कहा जा सकता है। हालांकि, नब्बे के दशक से सैद्धांतिक परिवर्तनों ने जनजाति की अवधारणा पर पुनर्विचार करने के लिए काफी बदलाव किए हैं। गैर–उपनिवेशीकरण (डीकोलोनाईजेशन) के सैद्धांतिक बदलावों के बाद, पहले से स्वीकृत शब्दावली और 'आदिम', 'जनजाति', 'जंगली' आदि जैसे उपनामों में सुधार किए जा रहे हैं और काफी पुनर्विचार किया जा रहा है। (चन्ना, 2015)

अब यह महसूस किया गया है कि अधिकांश वर्गीकरण और लेबलिंग वास्तविकता के प्रति सम्मान में नहीं बल्कि सत्ता धारकों की प्रशासनिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए किया गया था।(खाखा, 2008ए राईक्रॉफ्ट और दासगुप्त, 2011) एक महत्वपूर्ण विकास, स्थानीय विद्वानों का लेखन रहा है, जो अध्ययन की वस्तुएं थीं, जो कि अब खुद के बारे में बात करने का जरिया और आवाज है। (हम्त्सो–निएनू, पिमोमो और तुनी 2012 कामेई 2004)

समकालीन भारतीय मानव विज्ञान भी हाशिए के लोगों को स्वर देने और आदिवासी समाज के वास्तविक स्वरूप को आगे लाने की वकालत कर रहा है, और उसके पहलुओं में यह बात शामिल है कि वे 'आदिम' कम विकसित नहीं हैं, अपितु सदियों से अच्छी प्रकार से अनुकूलित अर्थव्यवस्थाएं हैं जिनमें विशेष रूप से एक स्थायी भविष्य के लिए महान मूल्य और ज्ञान प्रणालियों के भंडार हैं।

अपनी प्रगति की जाँच करें 5

13. उस भारतीय विश्वविद्यालय का नाम बताएं जहां 1921 में मानव विज्ञान का पहला विभाग स्थापित किया गया ।

.....

.....

.....

14. 1919 में भारत में सामाजिक मानव विज्ञान को पहली बार किस विश्वविद्यालय में समाजशास्त्र पाठ्यक्रम के एक भाग के रूप में प्रस्तुत किया गया।

.....

.....

.....

15. ग्रेट ब्रिटेन में मानव विज्ञान का जनक किसे माना जाता है? उनके क्लासिक मोनोग्राफ का नाम बताएं।

.....

.....

.....

16. *द टोडास* की रचना किसने की है?

.....

.....

.....

2.6 सारांश

इस इकाई में विद्यार्थियों हेतु मानव विज्ञान की शाखाओं के बारे में व्यापक प्रकाश डाला गया है, इसकी नींव यूरोप के इतिहास तक जाती है और इसकी प्रासंगिकता का भी वर्णन किया गया है साथ ही प्रारम्भिक वर्षों में इसके विस्तार के बारे में भी बताया गया है। इसकी स्थापना का कारण था उपनिवेशवाद, क्योंकि पहले ब्रिटिश और अन्य यूरोपीय और बाद में अमेरिकी प्रशासकों को उन लोगों के बारे में जानने की जरुरत थी जिन पर वे शासन कर रहे थे। यद्यपि शुरुआत में ब्रिटिश, फ्रेंच और अमेरिकी संप्रदायों के रूप में विकसित मानव विज्ञान आज हमारे समक्ष एक अधिक एकीकृत वैश्विक परिप्रेक्ष्य है।

मानव विज्ञानविदों द्वारा उनके क्षेत्रीयकार्य विधियों द्वारा प्राप्त ज्ञान को अपरिचित लोगों को समझने और शासन करने की संपत्ति के रूप में देखा गया था। इस प्रक्रिया में उपनिवेशवादियों ने विकासवादी स्कीम के आधार पर उपनिवेशीकरण को उचित ठहराया अपितु बाद में क्षेत्र आधारित मानव विज्ञानियों ने इसकी गंभीर रूप से आलोचना की। जिसमें इन्होंने यह पाया कि अधिकांश सांस्कृतिक लक्षणों को अपने संदर्भ में प्रासंगिकता प्रकट की गई है, इसे उच्च या निम्न के रूप में वर्गीकृत नहीं किया जा सकता है। बाद में सांस्कृतिक सापेक्षता के रूप में पहचान वाले इस परिप्रेक्ष्य ने मानव विज्ञानी संसार के स्थानीय लोगों के अधिकारों की वकालत की। यद्यपि भारत में भी मानव विज्ञान एक औपनिवेशिक विषय के रूप में शुरू हुआ। परंतु जल्द ही यह एक महत्वपूर्ण शाखा के रूप में विकसित हुआ जिसमें आदिवासी और गैर–शहरी लोगों के जीवन के तरीकों की रक्षा करने की कोशिश की जा रही थी। जनजातीय लोगों को जीवन को अपने तरीके से जीने के लिए मानवविज्ञानी और उनके हस्तक्षेप के माध्यम से भारतीय राज्य द्वारा कई कानूनों और नीतियों को अपनाया गया था। चूंकि, जीवन के ये परंपरागत तरीके नव उदारवाद और वैश्विक पूंजीवाद के दबाव से खतरे में आ सकते हैं, यही

कारण है की मानव विज्ञानी, सीमांत समुदायों और उनके जीवन के तरीकों की रक्षा कर रहे हैं। इस प्रक्रिया में उन्होंने परंपरागत आर्थिक सिद्धांतों और विकास की अवधारणाओं की आलोचना भी विकसित की है, जो केवल आर्थिक विकास को ही उन्नति का मानदंड मानती थी। इस प्रकार मानव विज्ञान आज एक बहुत ही प्रासंगिक विषय है जो विशेष रूप से प्रशासकों और नीति निर्माताओं के अध्ययन के लिए यह जरुरी है। अगली इकाई में हम यह जानेंगे की कैसे सामाजिक–सांस्कृतिक मानवविज्ञान अन्य विषय अनुशासनों जैसे इतिहास,समाजशास्त्र, मनोविज्ञान के साथ कैसे संबंधित है।

2.7 संदर्भ

अरोन, रेमंड. (1965) *मेन करेंट्स इन सोशियोलॉजिकल थॉट* (खंड 2), हार्मंडवर्थः ट्रांसेक्शन प्रकाशक.

बील्स, एलन और मैककिम मैरियट (संपा.) 1955, *विलेज इंडिया : स्टडीज इन द लिटिल कम्युनिटी*, शिकागो : शिकागो विश्वविद्यालय प्रेस.

बोडिंग, पी.ओ. 1986 (1925–40) *स्टडीज इन सैंटल मेडिसिन एंड कनेक्टेड फोकलोर*, कलकत्ता : द एशियाटिक सोसाइटी.

बोस, निर्मल कुमार 1992 (1975) *द स्ट्रक्चर ऑफ हिंदू सोसाइटी* , हैदराबादः ओरिएंट लॉन्गमैन.

चन्ना, सुभद्रा मित्रा. (2015). *स्टेट कण्ट्रोल, पोलिटिकल मेनिपुलेसंस, एंड द क्रिएशन ऑफ आईडेंटिटीज : 'द नार्थ–ईस्ट ऑफ इंडिया'* एनएमएमएल ओकेसनल पेपरः हिस्ट्री एंड सोसाइटी , न्यू सीरीज 72, नई दिल्ली : नेहरू मेमोरियल संग्रहालय और पुस्तकालय.

नाथन, देव. (संपा.) (1997). *फ्रॉम ट्राइब टू कास्ट* शिमला : भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान.

एल्विन, वेरियर. (1944). *द अबोरिजिंल्स बॉम्बेः* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

एल्विन, वेरियर. (1959). (संशोधित संस्करण) *ए फिलोसोफी फॉर एनईएफए*, शिलांगः उत्तर–पूर्व फ्रंटियर एजेंसी.

इवांस–प्रिचर्ड, ईई (1981). *ए हिस्ट्री ऑफ एन्थ्रोपोलॉजी थॉटः* लंदनः बेसिक बुक्स

घूर्रे, जी.एस 1959. (1943) *द शेडयूल ट्राइब्स ऑफ इंडिया.* बॉम्बेः पोपुलर प्रकाशन.

हम्त्सो–निएनयू, ईइंगबेनी, पॉल पिमोमो और वेनुसा तुनी. 2012. *नागासः एसेज ऑफ रेस्पोंसीबल चेंज,* नागालैंडः हेरिटेज पब्लिशिंग हाउस.

इंगोल्ड, टिम. (1986). *एवोलुशन एंड सोशल लाइफ.* कैम्ब्रिजः कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस.

कामेई, गंगमुमेई. (2004). *हिस्ट्री ऑफ द जेलियनगोंग नागाः फ्रॉम माखेल टू रानी गैडिनिल.* गुवाहाटीः स्पेक्ट्रम प्रकाशन.

लीफ, मुर्रे जे. (1979). *मैन, माइंड एंड साइंसः ए हिस्ट्री ऑफ एन्थ्रोपोलॉजी.* न्यूयार्क, कोलंबिया विश्वविद्यालय प्रेस.

ऑर्टनर, शेरी. (1974). *इज फीमेल टू मेल एज नेचर इज टू कल्चर?* वीमेन, कल्चर एंड सोसाइटी, संपा मिशेल जेड रोसाल्डो और लुईस लैंपेयर, 68–87, स्टैनफोर्ड, सीएः स्टैनफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

रॉय, शरत चंद्र. (1912). *द मुंडा एंड देएर कंट्री.* कलकत्ताः कुंटालीन प्रेस.

रॉय–बर्मन, बीके (1994). *इंडिजेनस एंड ट्राइबल पीपल्सः मिस्ट एंड न्यू होरिजंस,* नई दिल्लीः मित्तल प्रकाशन.

रायक्रॉफ्ट, डैनियल जे और संगीता दासगुप्त. (संपा.) 2011. द पॉलिटिक्स ऑफ बेलोंगिंग इन इंडिया : बेकमिंग आदिवासी. यूके रूटलेज.

शर्मा, बी.डी. (2001). *ट्राइबल अफेयर्स इन इंडिया : द क्रूशियल ट्रांजीशन,* नई दिल्लीः सहयोग पुस्तक कुटीर.

श्रीनिवास, एमएन (1966). *सोशल चेंज इन मॉडर्न इंडिया,* बॉम्बेः सहयोगी प्रकाशक.

ट्रुटमैन, थॉमस. (1992). (पुनर्मुद्रण) *आर्यन्स एंड द ब्रिटिश इन इंडिया.* नई दिल्ली : योदा प्रेस

उलिन, रॉबर्ट सी (2001). *अंडरस्टैंडिंग कल्चर : पर्सपेक्टिव्स इन एंथ्रोपोलॉजी एंड सोशल थ्योरी.* यूएसएः ब्लैकवेल.

विद्यार्थी, एल.पी. (1963). *मालेरः एक स्टडी इन नेचर–मेन–स्पिरिट काम्प्लेक्स ऑफ ए हिल ट्राइब :* कलकत्ताः बुकलैंड प्रा. लिमिटेड.

ससा, वर्जिनियस. (2008). *स्टेट, सोसाइटी एंड ट्राइब्स : इश्यूज इन पोस्ट– कोलोनियल इंडिया.*नई दिल्ली : पियर्सन–लांगमैन.

2.8 आपकी प्रगति की जाँच करने के लिए उत्तर

1. ऑगस्टे कॉम्टे, हर्बर्ट स्पेंसर, वालेस और चार्ल्स डार्विन कुछ प्रारंभिक विचारक थे जिन्होंने मनुष्यों और समाजों के विकास के बारे में वर्णन किया।
2. हर्बर्ट स्पेंसर
3. देखें अनुभाग 2.1
4. सत्य
5. देखें अनुभाग 2.2
6. एडवर्ड बी. टायलर
7. (ए) भौतिक या जैविक मानव विज्ञान (बी) सामाजिक/सांस्कृतिक मानव विज्ञानय (सी) पुरातात्विक मानव विज्ञान (डी) भाषाई मानव विज्ञान ।
8. क्षेत्रीयकार्य (फील्डवर्क)
9. ब्रोनीस्लो मालिनोवस्की
10. फ्रांज बोआस

11. देखें अनुभाग 2.4
12. फ्रांज बोआस, ए. एल. क्रोबर,मार्गेट मीड,ई.ई.इवंस प्रिचर्ड, रुथ बेनेडिक्ट
13. कलकत्ता विश्वविद्यालय
14. बॉम्बे विश्वविद्यालय
15. ए. आर. रैडक्लिफ–ब्राउन को ग्रेट ब्रिटेन में मानव विज्ञान के जनक के रूप में माना जाता है? अंडमान द्वीपसमूह उनका क्लासिक मोनोग्राफ है।
16. डब्ल्यू. एच. आर. रिवर्स ने द टोडाज नामक पुस्तक लिखी है।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY